राजस्थानी लोक साहित्य के विविध पक्षों का अनुशीलन

*डॉ. कृष्णबीर सिंह

लोक साहित्य पर चर्चा करने से पूर्व लोक और साहित्य के अन्त:करण में समाहित शब्दार्थ की गहराई पर क्षणिक दृष्टिपात कर लेना प्रासंगिक समझता हूँ।

लोक शब्द मूलत: संस्कृत भाषा का पुल्लिंग शब्द है जिसको विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जा सकता है किन्तु इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सटीक शब्दार्थ है-सर्वसाधारण जनता से संबंधित अर्थात ऐसा साहित्य जो उस समाज के सर्वाधिक न्यूनतम से उच्च वर्ग तक के लोगों के जीवन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से संबंधित समस्त लोक साहित्य की श्र्रेणी में आता है।

लोक साहित्य में मानव व उससे जुड़े प्रत्येक घटक का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें सुख-दुख, व्यंगय, स्पष्टोक्ति के साथ ईश्वर, प्रकृति एवं जीवन दर्शन का अत्यन्त सटीकता से उल्लेख प्राप्त होता है। लोक साहित्य किसी भी देश, राज्य, समाज समुदाय या वर्ग की अमूल्य धरोहर होती है। संसार के प्रत्येक समाज या वर्ग का अपना लोक साहित्य होता है जिसमें मिश्र्री जैसी मिठास के साथ ईमली की खटाई जैसा चटकारा भी व्याप्त होता है।

विशेषत: राजस्थान के लोक साहित्य पर चर्चा करते हैं तो हमें एक बहुत बड़ा फलक दिखाई देता है। कारण, राजस्थान एक विस्तृत और विविध बोलियों वाला प्रदेश है। राजस्थान की भौगोलिक स्थिति में पर्याप्त विषमता दिखाई देती है। यहाँ सागर की भाँति पसरा विशाल रेत का समन्दर है तो दूसरी तरफ अरावली पर्वतमाला एवं उनकी हरियाली का दृश्य कश्मीर की याद दिलाता है। एक तरफ दुर्दान्त सूखा है तो दूसरी तरफ चम्बल जैसी प्रसिद्ध नदियाँ भी बह रही हैं। सरस्वती नदी के अवशेष आज भी उपलब्ध हैं।

यहाँ पठारी मैदान हैं तो घग्घर, लूनी, बनास, बेड़च, खाटी नदियाँ, माही, सोम, जाकम आदि स्थान प्रसिद्ध नदियाँ भी अपना महत्त्व रखती हैं। माउन्ट आबू का गुरु शिखर स्वर्ग स्थल का अहसास करवाने में सक्षम हैं।

उपर्युक्त भौगोलिक व्याख्या करने का उद्देश्य यही है कि भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार ही मानव व मानव समाज की प्रत्येक गतिविधि एवं क्रिया कलाप संचालित होती है। लोक जीवन पर पड़ौसी क्षेत्र का भी प्रभाव स्वत: ही परिलक्षित हो जाता है। राजस्थान की सीमा पाकिस्तान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि राज्यों से जुड़ी हुई है। इतिहासकारों का मानना है कि लगभग 1200 ई. से यह भू भाग निम्नलिखित अंचलों में विभक्त हो गया था-

1. जांगल-इसमें प्रमुख रूप से नागौर, सांभर, अजमेर एवं बीकाने आदि थे।

2. मत्स्य-इसमें भरतपुर राज्य का अधिकांश भाग, अलवर का कुछ भाग तथा जयपुर का कुछ भाग सम्मिलित था।

3. शिवि-इसमें चित्तौड़गढ़ एवं उदयपुर प्रदेश सम्मिलित थे।

4. मेवाड़-पूर्व में शिवि जनपद ही बाद में मेवाड़ के नाम से जाना गया।

5. मारवाड़-रामायण कालीन मरु प्रदेश ही मारवाड़ कहलाया। इसमें जोधपुर के आस पास का समस्त शुष्क व रेतीला भाग सम्मिलित है।

6. हाड़ौती-कोटा एवं बूंदी का क्षेत्र।

7. ढूँढाड-टोंक, टोडा का उत्तरी भाग,दौसा के सैंथल नामक स्थान से पश्चिम की ओर, नागौर जिले के पूर्व की ओर के क्षेत्र, जयपुर का क्षेत्र आदि सम्मिलित थे।

8. बांगड-डूँगरपुर, बाँसवाड़ा आदि के क्षेत्र।

9. मेवात-अलवर, भरतपुर, करौली एवं धौलपुर के पूर्वी भाग। प्राचीनकाल में इस क्षेत्र का कुछ भाग मत्स्य जनपद के नाम से भी संज्ञित था।

ऋग्वेद काल से आधुनिक काल तक इस प्रदेश में अनेकों भौगोलिक परिवर्तन हुए हैं। इस समस्त परिवर्तनों का जनजीवन पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव अवश्य ही पड़ा है।

स्वतंत्रता से पूर्व राजस्थान में कुल मिलाकर 19 रियासतें थीं जिनका प्रशासन विभिन्न राजवंशों के हाथों में था। पूर्व में भी उल्लेखित किया जा चुका है कि राजस्थान का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना प्राचीन मानव सभ्यता का इतिहास है। यहाँ पूर्व पाषाणकालीन आदि मानव की संस्कृति के उद्भव के प्रमाण प्राप्त होते हैं। विद्वानों का दावा है कि आज के रेगिस्तानी क्षेत्र में सैकड़ों वर्ष पूर्व समुद्र था। यहाँ की प्राचीन सभ्यताओं में कालीबंगा गगानगर जिले में घग्घर नदी की घाटी में प्राक हडप्पाकालीन सभ्यता है आहाड़ बनाद नदी की घाटी उदयपुर, गणेश्वर ताम्रयुगीन संस्कृति जो कि सीकर जिले के नीम का थाना से 15 किमी. दूर स्थित है, उदयपुर नगर से उत्तर पूर्व में लगभग 40 किमी. दूर बालाथल सभ्यता, जयपुर से 85 किमी. दूर अलवर जयपुर मार्ग पर बैराठा सभ्यता आदि प्रमख हैं। इसी प्रकार यह प्रदेश राजपूतों की वीरता, शौर्यता एवं शासन का क्षेत्र रहा है।

इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के उल्लेख का कारण यही रहा है कि इसका सीधा संबंध लोकजीवन के प्रत्येक पक्ष से जुड़ा हुआ है।

चूँकि लोक साहित्य का सीधा सरोकार प्रकृति और जीवन से है अत: लोक साहित्य में लयात्मकता प्रमुख रूप से देखी जा सकती है। यही कारण है कि कुछेक गद्यात्मक वर्ग की रचनाओं के अलावा गद्यात्मक रचनाओं में भी पद्यात्मक रूप दिखाई देता है। लोक साहित्य की लयात्मकता को देखकर यह कहना उचित ही प्रतीत होता है कि भाषा का उद्‌गम ही संगीतात्मक था। बाद में धीरे धीरे गद्य, भाषा और संगीत ये तत्त्व दो पृथक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं के रूप में विकसित हुए[1]। गद्यमय भाषा का जन्म पहले हुआ और उसके पश्चात पद्य का आविर्भाव हुआ, किन्तु उसकी भाषा का गद्य स्वरूप सुरक्षित नहीं रह सका, पर संगीत के माधुर्य के कारण उसका पद्य एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में आता हुआआज भी जीवित हैं[2]।

लोक साहित्य एवं लोक जीवन का गहरा अन्त: सम्बन्ध होता है। समय, काल, परिस्थिति एवं अवसर के अनुरूप लोक साहित्य विभिन्न रूपों में मानव जीवन के उद्‌गारों को अभिव्यक्त करता है। मुख्य रूप से लोक साहित्य को पाँच वर्गों में बाँट सकते हैं[3]-

1. लोक गीत 2. लोक गाथा 3. लोक कथा 4. लोक नाट्य 5. प्रकीर्ण साहित्य[4]।

चूँकि लोक साहित्य लोक चित से उत्पन्न होता है अत: उसको वर्गों में बाँटना संभव नहीं है। उपर्युक्त वर्गों में अनेकों उपवर्ग समाहित हैं। इन वर्ग एवं उपवर्गों की भाषा, भाव कथानक एवं उद्देश्य स्थान, समाज एवं वातावरण के अनुसार परिवर्तित होते हैं।

लोक साहित्य में ईश्वर तुल्य आस्था समाहित है जो पीढ़ी दर पीढी एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ तक अपनी यात्रा पूर्ण करता है। वास्तव में लोक

*अध्यक्ष हिन्दी विभाग, एस.एस.जी. पारीक (पी.जी.) कॉलेज, जयपुर

साहित्य में लोगीत गद्य एवं पद्य, लोक संगीत, लोक नाट्य लोक कला एवं लोक परम्पराओं का समावेश होता है। इन समस्त घटकों के योग से ही लोक साहित्य के स्वरूप का निर्माण होता है। यदि हम लोक साहित्य की परम्परा एवं स्वरूप के विकास को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि मात्र बोली के आधार पर शैली में किंचित परिवर्तन हुआ है मूल कथानक के स्वरूप में बहुत अधिक परिवर्तन दिखाई नहीं देता। विशेशत: लोककथा, लोक गाथा, लोकवार्ता एवं लोक नाट्य में यह समानता देखी जा सकती है। वहीं लोकगीतों में लोकोक्ति, महावरे, चुटकले आदि में भी इस ामानता के दर्शन होते हैं।

पुन: यह गर्व एवं प्रसन्नता का विषय है कि राजस्थानी लोक साहित्य की प्रत्येक विधा इतनी समृद्ध है कि उसमें मानव जीवन ही नहीं समस्त प्रकृति को उचित स्थान प्राप्त है। गर्भ धारण से लेकर प्रणावस्था से मृत्यु के पश्चात् देवलोक गमन तक, प्रसन्नता दुख संताप के अलावा नैतिक जिम्मेदारियों का मानव जीवन उद्देश्य कर्तव्यों का, सामाजिक पारिवारिक दायित्वों के विषय में पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होते हैं। ये लोक साहित्य मौखिक एवं अलिखित होने के उपरान्त इतने वैज्ञानिक ढंग से सर्वत्र त्वरित उपलब्ध हैं कि अशिक्षिज्ञत पुरुष स्त्री तुरन्त लोक साहित्य के अपेक्षित वर्ग को प्रस्तुत कर देते हैं।

राजस्थानी लोककथाओं में मानव जीवन–राजस्थानी लोक कथाओं सभ्यता एवं लोकाचारों के बिम्ब दिखाई देते हैं। प्रत्येक आयु वर्ग हेतु लोककथाओं का कथानक एवं वैशिष्ट्य भिन्न भिन्न है। वास्तव में राजस्थानी लोककथाओं में यहां के लोगों की मानसिकता एवं चिन्तन प्रक्रिया आदि का सटीक व मार्मिक चित्रण उपलब्ध है। साथ ही समाज, प्रकृति एवं अन्य प्राणियों की सहभागिता का भी वर्णन प्राप्त होता है। लोककथाएँ प्राय दुख, पीड़ा, संकट से प्रारम्भ होकर सुखान्त के साथ इति होती हैं। लोककथा की लोकप्रियता कथा कहने वाले पर काफी निर्भर होती है। यदि व श्र्योता की मानसिकता के अनुसार गद्य एवं पद्य के मिश्र्याण के साथ लोकभाषा सुनाता है तो आकर्षण और भी बढ़ जाता है। राजस्थान में प्रचलित लोककथाओं में प्रेम, शौर्य, नारी चरित्र, व्रत त्यौहार, लोकदेवता, लोकदेवी, नीति संबंधी, अलौकिक, चमत्कारिक, पशु पक्षी, नाग संबंधी, परी प्रेम, चूडैल, राक्षस, भूत, जिन्न, चोर, ठग, डाकू, के अलावा राजा रानी संबंधी लोककथाएं प्रचलित है।

लोककथाओं का मूल विषय या कथानक चाहे राजा से प्रारम्भहोता हो अथवा चोर ठग या डाकू से। शनै: शनै: कथा नैतिक चरित्र की ओर अग्रसर होकर उस निर्णायक बिन्दू पर पहुँच जाती है जहां वह पूर्णत: शिक्षात्मक उद्देश्य का पापत करती है। यदि कहीं अविश्वास या धोखा संबंधी समाप्त स्थल आता है तो कथा कहने वाला स्पष्टत यह बता देता है कि ऐसे कृत्य करने वालों का परिणाम क्या होता है। कथा चाहे भूत प्रेत या जिन्न की हो अथवा पशु पक्षी या नाग देवता की, समस्त कथाओं के केन्द्र बिन्दू में मानव ही रहता है।

जहां तक इन कथाओं में पशु पक्षी या भूत प्रेतों को सम्मिलित करने का प्रश्न है तो संभवत: मानव को यह समझाते हुए कथा आगे बढ़ती है कि इन सभी का जहाँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है वहीं इनके माध्यम से एक इंसान बनने की नसीहत भी दी जा रही है।

प्रसिद्ध राजस्थानी लोकगाथाएं–विशेषत: लोक साहित्य का यह पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि सम्पूर्ण भारत के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमें वीर गाथा, प्रेमगाथा एवं रोमांचक गाथा, तीन प्रमुख भेद दिखाई पड़ते हैं[5]। प्रसिद्ध लोकगाथाओं में कुसुमा[6], लोरिकायन[7], विजयमल कुंवर बिजई, आल्हा[8], कुँवरसिंह शोभानायक बनजारा, हीर राँझा, चनैनी, बाला लखन्दर, कृष्ण सुदामा, राजा भरथरी[9], राजा गोपीचन्द, लीलो चमन, लैला मजनूं आदि।

राजस्थानी लोकगाथाएँ पाबूजी, तेजाजी, गोगाजी, पृथ्वीराज, सुलतान बगड़ावत, ढोला मारु, निहालदे, सुलतान, गलालेंग डूंगर जवार जी आदि प्रसिद्ध हैं।

इन लोकगाथाओं में जीवन के समस्त पक्षों का सोदाहरण उल्लेख है। कथानक पौराणिक, भक्तिमूलक, शौर्यपरक, रोमांचकारी एवं प्रेम प्रधान होने पर भी मूल उद्देश्य नैतिकता, वचन पालन, गो रक्षा सत्य का निर्वहन, शौर्यता एवं वीरता का प्रदर्शन तथा सर्वगुण सम्पन्नता का परिचय प्रस्तु करना होता है। पुरुष एवं स्त्री के कर्त्तव्यों का प्रत्येक कोण से अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विधि से वर्णन किया जाना इन लोकगाथाओं की विशेषत: एवं सफलता भी है।

लोक ग्रन्थ–यद्यपि यह विषय वाद विवाद का हो सकता है। किंतु संवाद के आधार पर विचार करें तो मुझे ऐसा लगता है कि ऐसी सशक्त मौखिक परम्परा जो हजारों सदियों से एक व्यक्ति से दूसरे तक, एक पीढी से दूसरी पीढ़ी तक अनवरत रूप से हस्ताक्षरित हो रही है निस्संदहे सर्वमान्य एवं से लोकप्रियता के कारण ही चिरंजीवी हो पाइ है। सामान्यत: अति विशिष्ट एवं लोकप्रिय लोकगाथाओ ेंका लिपिबद्ध करने का सफल उद्योग भी हुआ है।

वे लोकगाथाएँ जो हमें किसी भी रूप में लिखित में प्राप्त होती हैं वास्तव में उन्हें लोक ग्रन्थ कहाना जाना उचित इसलिए होगा कि यही वे साहित्यिक धरोहर है जो व्यक्ति, समाज और जमीन से जुड़ा है। सम्भवत: मौखिक रूप में उपलब्ध साहितय को लोकगाथाओं के नाम से एवं लिखित रूप में प्राप्त लोकगाथाओं को लोकग्रन्थों के नाम से संज्ञित किया जाये तो उचित प्रीत त होता है।

लोकगाथाऐं में गद्य एवं पद्य का मिश्र्यित रूप प्राप्त होता है। कथानक के पात्र अति चरित्रवान व निष्ठावान होते हैं। जो जीवन में आये विभिन्न झंझावातों से टकराते हुए आगे बढ़ते हैं एवं मानव के वास्तविक कर्त्व्यों, उद्देश्यों को इंगित करते हुए उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

रानी रमुलिया और राजा वीर सिंह की प्रसिद्ध लोकगाथा छत्तीसगढ, मध्यप्रदेश आदि क्षेत्र में प्रचारित है। इस लोकगाथा में पति धर्म के निर्वाह की चर्चा है[10]। इसी भाँति राजस्थान में पाबूजी की लोकगाथा बहुत प्रसिद्ध है। इस लोक गाथा में मसाज के समस्त वर्ग एवं लोगों का सम्मानीय वर्णन है। गौ रक्षा का अति उत्कृष्ट उदाहरण है। लोकगाथाओं का शिल्प सौन्दर्य देखते ही बनता है।

निष्कर्षत: लोकग्रन्थों पर महान चिन्तन मनन एवं शोधात्मक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है। पाठालोचन के आधार पर उपलब्ध ऐसी लोकगाथाओं का संरक्षण किया जाना चाहिए ताकि ये लोक ग्रन्थ मानव सभ्यता के प्रमाणों को भविष्य में प्रसन्नता पूर्वक प्रस्तुत कर सकें।

राजस्थानी लोक नाट्यों में मानव जीवन–मनुष्य के जीवन में चार चीजों का महत्व प्रारम्भ से ही रहा है–

गीत, संगीत, नृत्य और अभिनय। इसका सर्वाधिक सशक्त पक्ष अभिनय माना जा सकता है क्योंकि इसमें शेष तीनों का समावेश स्वत: अथवा आवश्यकतानुसार हो सकता है या हो जाता है।

हिन्दी प्रदेशों में लोक नाट्य एक स्वस्थ परम्परा के रूप में दिखाई देती है। इस परम्परा में विभिन्न नाट्य शैलियों का समावेश है जो एक जाति विशेष या समुदाय विशेष द्वारा पोषित व पालित हो रही है। विशेषत: राजस्थान में कठपुतली व नटों के खेल आदि अत्यन्त लोकप्रिय व प्राचीन हैं। लोक नाट्यों के विभिन्न स्वरूपों में पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा किये जाने वाले एकल या सामूहिक विशेष नृत्य एवं गीत आदि भी इस परम्परा में आते हैं। विशेषत: हिन्दी प्रदेशों की लोकनाट्य परम्परा भरत मुनि से भी प्राचीन है। विद्वानों ने इस प्राचीन लोक परम्परा को आधुनिक हिन्दी नाटकों का मूल स्रोत बनाया है[11]।

लोकनाट्य एक सामुदायिक लोक परम्परा का बीज मन्त्र है जो मानव समाज में प्रेम, सौहार्द एवं संवेदनाओं का विकास करता है। बहुत से ऐसे लोकनाट्य हैं जो किसी जाति, वर्ग या समुदाय विशेष से संबंधित हैं किन्तु जब इन्हें सार्वजनिक रूप से मंचित या प्रदर्शित किया जाता है तो समाज के सभी वर्ग के लोक अत्यन्त सौहार्द्रता के साथ उपस्थित होते हैं ये लोकनाट्य विभिन्न पर्वो, उत्सवों एवं विशिष्ट कार्यक्रमों पर आयोजित

होते हैं। अनेकों लोकनाट्य ऐसे हैं जिनमें समाज, जाति या वर्ग की किसी कमजोरी बुराई को तीखे शब्दों में इंकित किया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इनमें किसी भी प्रकार की दुर्भावना न होने के कारण वैमनश्यता नहीं फैलती।

जयपुर की गालीबाजी ऐसी ही लोकनाट्य परम्परा है जो अत्यन्त प्रसिद्ध है।

संक्षेप में राजस्थान के प्रसिद्ध लोकनाट्यों के विभिन्न रूपों का वर्णन किया जाना अपेक्षित है–

सामान्यत: यह परमपरा रामलीला, रासलीला, गाली बाजी, रम्मत, समया, नौटंकी, स्वाँग या नकल, गवरी एवं ख्याल आदि के अलावा गींदड डंडिया स्वांग आदि प्रसिद्ध हैं।

वैसे इस परम्परा में इतनी विशालता है कि प्रत्येक जाति का, प्रत्येक गाँव का, नगर का एवं शहर का अपना एक लोकनाट्य है जो सम्भवत: अन्य से काफी साम्यता रखता है किन्तु फिर भी शैली, भाषा एवं मंचन में भेद स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उल्लेखनीय बात यह है कि बालक, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध नर नारियों द्वारा स्वतन्त्र रूप से स्वतंत्र नाट्य परम्पराओं का निवर्हन किया जाता है जबकि सामूहिक भी ऐसा होता है जहां तक राजस्थान में इस लोकनाट्य परम्पा का सर्वाधिक प्रौढ़ एवं साहित्यिक स्वरूप है, वह है ख्याल परम्परा।

राजस्थान में स्थान एवं क्षेत्र विशेष के आधार पर ख्याल की समृद्ध परम्परा दिखाई देती है। यद्यपि इस परमपरा में गायन का मुख्य पक्ष होता है किन्तु प्रस्तुतिकरण की विधि आदि में नाट्य शैली स्वत: ही समाहित हो जाने के कारण इसे लोक नाट्य श्र्योणी में ही रखा गया है।

प्रमुख राजस्थानी ख्यालों में अलीबक्ष ख्याल, जयपुरी ख्याल, कोटा ख्याल, झालावाड़ी या झालावाड़ ख्याल, तुर्रा कलंगी ख्याल, अलवरी या अलवर ख्याल, शेखावाटी ख्याल, मेवाड़ी ख्याल, फलौदी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल, कड़ा ,ाल, चिड़ावा या चिड़ावी ख्याल, बीकानेरी ख्याल, जैसलमेरी ख्याल, गन्धर्व ख्याल, हाथरसी ख्याल, नागौरी ख्याल, दो बोला ख्याल, चौबोला ख्याल, कथा ख्याल या कथाकथन ख्याल, कड़ा ,ख्याल कुचामणी ख्याल आदि।

बीकानेर एवं जैसलमेर क्षेत्र में ख्यालों को रम्मते भी कहा जाता है।

ख्याल के विषय में जैसे पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि यह संगीत, काव्य, नृत्य के आत्मिक सहयोग से आगे बढ़ता है अर्थात प्रत्येक ख्याल के वाद्य यंत्र छन्द आदि निश्चित होते हैं। प्रस्तुतिकरण की शैली भी निश्चित होती है। जहां तक कथानक का प्रश्न है तो ये मूमल–महेन्द्र, केसर–गुलाब, हीर–राँझा, ढोला–मारु, सत्यवान–सावित्री, राजा हरिश्चन्द्र, अंजना, चन्दनबाला, मैना सुन्दरी, भर्तृहरि, पूरणमल, अमरसिंह राठौड़, लक्ष्मण–शक्ति, रुक्मिणी मंगल, राहगीर, लव–कुश, ध्रुवलीला, मोरध्वज, राजा हम्मीर, पृथ्वीराज, निहालदे, गुलबकावल फसावों आजाद, पद्मावत, कृष्णलीला आदि के चरित्र एवं जीवनगाथा का गद्यात्मक एवं पद्यात्मक वर्णन करते हैं। मनोरंजन के साथ नैतिक शिक्षा की प्रधानता इनकी विशेषता कही जा सकती है।

राजस्थानी लोगीतों में मानव जीवन–जीवन के रोम रोम में समाहित वह विधा जो कराह, पीड़ा, दर्द वेदना, टीस, आक्रोश के अलावा प्रसन्नता, संवेदना एवं भावुकतापूण्र क्षणों में सदैव अपनी उपस्थित दर्ज कराती है,गीत के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। विशेषत: लोकगीत नितान्त स्वतंत्र एवं स्वछन्द प्रकृति के होते हैं जो काव्यशास्त्र, भाषा विज्ञान या अन्य किसी बनावट, बुनावट संबंधी विधानों एवं नियमों की परिधि में नहीं आते अपितु इनमें स्वाभाविक रूप से नियमों की अउपलब्धता हो जाये तो कोई आश्चर्य या निषेधयन नहीं है।

राजस्थान में छत्तीस जातियाँ मानी गई हैं। प्रत्येक जाति का पहनावा, कार्य क्षेत्र, व्यवहार, रीति रिवाज, परम्पराएँ अपनी होती हैं ठीक उसी भाँति प्रत्येक जाति के लोकगीत भी अपने अपने होते हैं। भाषा, भाव एवं शैली के आधार पर इनका वर्गीकरण आसानी से किया जा सकता है।

लोकगीत, निजी, पारिवारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि श्र्योणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। लोकगीतों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि मानव व समाज का कोई भी पक्ष अछूता नहीं है जिस पर कोई लोकगीत न हो। सभ्य, असभ्य, अश्लील, पाण्डितपूर्ण सभी प्रकार के लोकगीतों की विस्तृत शृंखला मौजूद है। विभिन्न पर्वों, त्योहारों, शादी समारोह, तीज मेलों के अलावा प्रसन्नता एवं दुख के समय गाये जाने वाले लोकगीतों में मानवीय पक्ष का संवेदनशील रूप पूरी मार्मिकता के साथ उभरकर सामने आता है।

लोकदेवता या लोक देवियों की स्तुति हो अथवा पीतर, सती आदि प्रकरणों की बात हो लोकगीत उपलब्ध हैं। मेहमान के रिश्ते एवं संबंध के अनुसार लोकगीत का वांछित स्वरूप उपलब्ध है। इन गीतों में जिन स्थानीय देशज शबदों का प्रयोग किया गया है वे भाव की गहराई व व्यंजना शक्ति की मारक क्षमता को और अधिक सक्षम कर देते हैं। सोलह संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीत, जन्म मरण परण आदि के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों में मानव, मानवजीवन, प्रकृति समाज व संसार के अन्य प्राणियों, वस्तुओं का अत्यन्त सटीक व सजीव वर्णन उपलब्ध है।

संक्षेप में इतना कहना ही प्रासंगिक होगा कि लोकगीतों में उल्लेखित मानवीय संवेदनाओं का प्रस्तुतिकरण स्थान विशेष की विकास यात्रा एवं मानवीय दृष्टिकोण को व्यक्त करने में सक्षम है अत: लोकसाहित्य ही वह मंजूसा है जो हमारी अतीत की संस्कृति, सभ्यता एवं विकास यात्रा को सुरक्षित रखे हुए है एवं भविष्य तक सुरक्षित रखने की योगयता रखता है। आज पाश्चात्य प्रभाव एवं औद्योगिकीकरण ने लोक साहित्य को भारी नुकसान पहुँचाया है अत: हमें इसको अक्षुण्यता प्रदान करने हेतु पर्याप्त प्रयास करने चाहिए।

सन्दर्भ सूची–

1. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय–लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 7
2. डॉ. कृष्णलाल हँस–निमाड़ी और उसका साहित्य, पृष्ठ 302
3. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय–लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 27
4. मोहन कृष्णदर–कश्मीर का लोक साहित्य, पृष्ठ 10
5. डॉ. रवीन्द्र भ्रमर–लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 76
6. पं. रामनरेश त्रिपाठी–कविता कौमुदी ग्राम गीत, पृष्ठ 573
7. डॉ. सत्यव्रत सिन्हा–भोजपुरी लोकगाथा, पृष्ठ 71
8. वही पृष्ठ 59
9. डॉ. रामकुमार वर्मा–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 121
10. नागरी प्रचारिणी सभा काशी–हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, पृष्ठ 285–288
11. डॉ. दशरथ ओझा–हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास, पृष्ठ 36–37
12. डॉ. सत्येन्द्र–लोक साहित्य संबंधी विविध पुस्तकें